अथ द्वाविंशोऽध्यायः

—:o:—

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः**। स्वरः—**पञ्चमः**।

प्रभु की धरोहर

तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्याऽआयुर्मे पाहि।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥१॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **तेजः असि**=अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर तू तेजस्वी बना है। **शुक्रम्**=वीर्यवान् हुआ है और अतएव **अमृतम्**=तू रोगरूप मृत्युओं का शिकार नहीं हुआ है। २. **आयुष्याः**=इस प्रकार आधि-व्याधियों से अनाक्रान्त होकर तू अपने आयुष्य से धर्मरक्षा करनेवाला बना है। तू **आयुः मे पाहि** =मेरे द्वारा दिये हुए जीवन की रक्षा करना। इस जीवन को मेरी धरोहर समझना और इसे क्षीण व नष्ट न होने देना। ३. अब जीव प्रभु को उत्तर देता हुआ कहता है कि 'मैं आपके निर्देश को न भूलता हुआ इस आयुष्य के रक्षण के लिए (क) **त्वा सवितुः देवस्य प्रसवे**=तुझ प्रेरक देव की अनुज्ञा में ही प्रत्येक वस्तु का **आददे**=ग्रहण करता हूँ। **'आज्यं तौलस्य प्राशान'**=घृत को तोलकर खाओ' इस आपके निर्देश के अनुसार मैं प्रत्येक पदार्थ को मात्रा में ही स्वीकार करता हूँ। (ख) **अश्विनोः**=प्राणापान के **बाहुभ्याम्**=प्रयत्नों से **आददे**=प्रत्येक वस्तु को लेता हूँ। बिना प्रयत्न के मैं किसी भी वस्तु को लेना नहीं चाहता। मुफ़्त की वस्तु मुझे भोगमार्ग की ओर ले-जाती है। (ग) **पूष्णो हस्ताभ्याम्**=पूषा के हाथों से मैं प्रत्येक वस्तु को लेता हूँ, अर्थात् मैं प्रत्येक वस्तु को उतना ही ग्रहण करता हूँ जितना कि पोषण के लिए पर्याप्त होता है। वस्तुओं के उपभोग में मेरा मापक 'पोषण' होता है न कि 'स्वाद व सौन्दर्य' तभी मैं अपने प्रकृष्ट विकास का रक्षक बनकर मन्त्र का ऋषि 'प्रजापतिः' बनता हूँ।

भावार्थ—हमें 'तेजस्वी, वीर्यवान् व दीर्घजीवी' बनना है। आयु को प्रभु की धरोहर समझना है। आयु के रक्षण के लिए (क) प्रभु के आदेश के अनुसार प्रत्येक वस्तु का माप-तोलकर प्रयोग करना है। (ख) प्रयत्न से अर्थों का उपार्जन करना है और (ग) प्रयोग में मापक 'पोषण' को रखना है न कि 'स्वाद व सौन्दर्य' को।

ऋषिः—**यज्ञपुरुषः**। देवता—**विद्वांसः**। छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**। स्वरः—**धैवतः**।

ऋत की रशना

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विदथेषु कव्या।

सा नोऽअस्मिन्त्सुतऽआ बभूवऽऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती॥२॥

१. गतमन्त्र के अनुसार 'तेजस्वी, वीर्यवान् व दीर्घजीवी' बनने के लिए **कव्या**=(कवयः) समझदार लोग, वस्तुओं के तत्त्व को समझनेवाले लोग, **पूर्वे आयुषि**=पहले ही जीवन में **विदथेषु**=ज्ञानयज्ञों के प्रसंगों में **इमाम्**=इस **ऋतस्य रशनाम्**=ऋत की रशना को, व्यवस्थित जीवन के दृढ़निश्चय को, **अगृभ्णन्**=स्वीकार करते हैं। प्रत्येक बात का ठीक समय व

ठीक स्थान पर होना 'ऋत' कहलाता है। 'रशना' शब्द मेखला का वाचक होता हुआ दृढ़निश्चय का प्रतीक है। आचार्य लोग विद्यार्थी को मेखला देते थे, उसे ज्ञानी बनने के लिए कमर कस लेने व दृढ़निश्चयी बनने का उपदेश देते थे। यह सब 'पूर्व आयुषि' पहले जीवन में, जीवन के पहले प्रयाण में ही कर लेना ठीक है। ऐसा कर लेने पर ही यात्रा ठीक आरम्भ हो जाती है। आचार्य लोग विद्यार्थी को ज्ञान देते थे और उसे ऋत के मार्ग पर चलने की दृढ़ प्रेरणा प्राप्त करा देते थे। २. **सा**=वह 'ऋत की रशना' **नः**=हमें **अस्मिन् सुते**=इस जीवन-यज्ञ में या इस उत्पन्न हुए-हुए जगत् में **आबभूव**=सदा व्याप्त किये रक्खे, अर्थात् हम अपने इस जीवन में इस 'ऋत की रशना' को कभी उतार न दें, हमारा ऋत के मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय सदा बना रहे। ३. हमारे लिए यह मेखला **ऋतस्य सामन्**=ऋत की उपासना में (सामवेद=उपासनावेद) **सरम्**=कर्तव्यमार्ग का **आरपन्ती**=उपदेश देती है। हम सदा इस ऋत के उपासक बने रहें। 'सब कार्य ठीक समय व ठीक स्थान पर करनेवाले बनना' ही ऋत का उपासन है। ऋत का उपासक अपने कर्त्तव्यमार्ग को स्पष्ट देखता है और उसका आचरण करता है, इसका सारा जीवन ही यज्ञमय-सा हो जाता है अतः इसका नाम ही 'यज्ञपुरुष' हो जाता है। ऋत ही यज्ञ है। ऋत की रशना का ग्रहण करनेवाला यह 'यज्ञपुरुष' है।

भावार्थ—हम जीवन के प्रारम्भ में ही ऋत की रशना का धारण करें। इसे इस जीवनयज्ञ में धारण किये रक्खें। यह मेखला हमें सदा कर्त्तव्यमार्ग का उपदेश देनेवाली हो।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

रशना-(मेखला)-बन्धन

अभिधाऽअसि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳसप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥

१. गतमन्त्र में कहा था कि यह ऋत की रशना हमें इस उत्पन्न जगत् में सदा व्याप्त किये रक्खे, अर्थात् हम इस ऋत की रशना को कभी उतार न दें। यह ऋत की रशना को सदा धारण करनेवाला 'अभिदधाति इति अभिधाः' है। तू **अभिधाः**=(to lay or put on. fasten, bind) मेखला को बाँधने के कारण 'अभिधाः' नामवाला **असि**=है। २. **भुवनम् असि**=ऋत की रशना को धारण करने के कारण तू भुवन है, सबका आश्रय है। 'भवन्ति भूतानि यस्मिन्' जिसमें सब प्राणी रहते हैं। अथवा 'भुवन' का अर्थ जल भी है, अतः तू जल की भाँति शान्त होता है। ३. **यन्ता असि**=तू अपना नियमन करनेवाला है, इस शरीररूप रथ के इन्द्रिय-अश्वों को काबू में रखनेवाला है। ४. इन्द्रियाश्वों को काबू में रखने से **धर्त्ता**=तू सबका धारण करनेवाला है। ५. **सः त्वम्** =वह तू **स्वाहाकृतः**=स्वार्थत्याग से परिष्कृत जीवनवाला हुआ-हुआ **वैश्वानरम्**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले **सप्रथसम्**=(प्रथ विस्तारे) विस्तार से युक्त, अत्यन्त विशाल, सर्वव्यापक **अग्निम्**=सबकी अग्रगति के साधक प्रभु को **गच्छ**=प्रातः-सायं ध्यान द्वारा प्राप्त हो, अर्थात् प्रभु का स्मरण करनेवाला बन।

भावार्थ—हम ऋत की रशना को बाँधकर अपने जीवन को नियन्त्रित करते हुए सभी का धारण करनेवाले बनें और स्वार्थत्याग से जीवन को सुन्दर बनाते हुए प्रातः-सायं उस सर्वव्यापक, सर्वहितकारी प्रभु का स्मरण करें।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**विश्वेदेवाः**। छन्दः—**जगती**। स्वरः—**निषादः**॥

अश्व-बन्धन

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्। तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि॥४॥

१. हे **ब्रह्मन्**=(बृहि वृद्धौ) अत्यन्त बढ़े हुए (वर्धमानं स्वे दमे) **अश्वम्**=(अश्नुते) सर्वव्यापक **त्वा**=आपको **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए तथा **प्रजापतये**=प्रजाओं का पति बनने के लिए **भन्त्स्यामि**=बाँधूँगा, अर्थात् ध्यान के द्वारा अपने हृदय में आपका धारण करूँगा। २. **तेन**=उस अश्व-बन्धन के द्वारा मैं **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए तथा **प्रजापतये**=प्रजाओं की रक्षा के लिए **राध्यासम्**=सिद्धि को प्राप्त करूँ, समर्थ होऊँ, अर्थात् मैं प्रतिदिन हृदयदेश में प्रभु का बन्धन करता हुआ दिव्य गुणों को व प्रजापतित्व को प्राप्त करनेवाला बनूँ। ३. **तं बधान**=सर्वव्यापक प्रभु को तू बाँधनेवाला बन और **तेन**=उससे **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए तथा **प्रजापतये**=प्रजा का पति बनने के लिए **राध्नुहि**=सिद्ध हो, तू दिव्य गुणों को प्राप्त कर तथा प्रजा का रक्षक बन।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण करनेवाला व्यक्ति दिव्य गुणों को प्राप्त करता है और प्रजा का रक्षक बनता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**इन्द्रादयः**। छन्दः—**अतिधृतिः**। स्वरः—**षड्जः**।

अश्व-प्रोक्षण

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। योऽअर्वन्तं जिघाꣳसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा॥५॥

१. **प्रजापतये**=प्रजा का पति (रक्षक) बनने के लिए **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये गये **त्वा**=तुझे गतमन्त्र के अश्व, अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा को **प्रोक्षामि**=मैं अपने हृदयदेश में सिक्त करता हूँ। २. **इन्द्राग्निभ्याम्**=अपने अन्दर इन्द्र व अग्नितत्त्व के विकास के लिए, अर्थात् बल व प्रकाश की वृद्धि के लिए **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये गये **त्वा**=तुझे **प्रोक्षामि**=मैं अपने अन्दर सिक्त करता हूँ। ३. **वायवे**=वायुतत्त्व के विकास के लिए, अर्थात् (वा गतिगन्धनयोः) गति के द्वारा सब बुराइयों के हिंसन के लिए **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये गये **त्वा**=तुझको **प्रोक्षामि**=मैं अपने हृदयदेश में सिक्त करता हूँ। ४. **विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः** =शरीर में अंशरूपेण प्रविष्ट सब देवों के लिए, अर्थात् चक्षु आदि में प्रतिष्ठित सूर्यादि देवों से स्वास्थ्य के लिए (सूर्यः चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्) **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये गये **त्वा**=तुझे **प्रोक्षामि**=अपने हृदयदेश में सिक्त करता हूँ। ५. **सर्वेभ्यः देवेभ्यः**=इस बाह्य जगत् में स्थित सूर्यादि देवों की अनुकूलता के लिए तथा दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों की कृपादृष्टि के लिए **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन किये गये **त्वा**=तुझको **प्रोक्षामि**=अपने हृदयदेश में सिक्त करता हूँ, अर्थात् हृदय में प्रभु का स्मरण होने पर सब देवों की अनुकूलता होती है। ६. इसके विपरीत **यः**=जो **अर्वन्तम्**=उस हृदयस्थरूपेण प्रेरणा देनेवाले इस प्रभु को (अर्वः ईरणवान्-प्रेरकः नि० २०।३१) **जिघांसति**=नष्ट करना चाहता है, अर्थात् उसे भुलाकर संसार में आसक्त हो जाता है **तम्**=उसको **वरुणः**=वह श्रेष्ठ बनानेवाला प्रभु **अभ्यमीति**=(to pain, to attack) इस वृत्ति के लिए पीड़ित करता है। यह

मर्त्तः=(अश्वं जिघांसुः) परमेश्वर को भूलकर विषयों के पीछे मरनेवाला मनुष्य **परः**=पराभूत होता है, अधस्पद को प्राप्त कराया जाता है। यह **श्वा**=विषयास्थियों को चाटनेवाला कुत्ते-जैसा मनुष्य **परः**=पराकृत होता है, दूर किया जाता है, समाज में आदर नहीं पाता।

भावार्थ—हृदयदेश में प्रभु के स्मरण से मनुष्य प्रजापति बनता है, बल व प्रकाश को प्राप्त करता है, गतिशीलता से बुराइयों को दूर करता है, चक्षु आदि इन्द्रियों को स्वस्थ रख पाता है, सूर्यादि देव व विद्वान् इसके अनुकूल होते हैं। प्रभु को भूलनेवाला पीड़ित होता है, अन्ततः निरादृत होता है और अधोगति को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**अग्न्यादयः**। छन्दः—**भुरिगतिजगती**। स्वरः—**निषादः**।

दशकं धर्मलक्षणम् (धर्मलक्षण दशक)

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६॥

१. **अग्नये स्वाहा**=मैं अग्नि के समान तेजस्वी होने के लिए स्वार्थत्याग करता हूँ अथवा **स्व**=उस आत्मा (परमात्मा) के प्रति अपने को अर्पित करता हूँ। २. **सोमाय स्वाहा**=सोमतत्त्व के लिए, अर्थात् शान्त व सौम्य जीवन के लिए मैं प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ। स्वार्थ-त्याग से जहाँ मैं तेजस्वी बनता हूँ वहाँ शान्ति को धारण करनेवाला होता हूँ। ३. **अपां मोदाय**=कर्मों के अन्दर आनन्द प्राप्ति के लिए **स्वाहा** =मैं प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ। ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति सदा क्रियाशील होता है। प्रभु की भाँति उसकी क्रिया स्वाभाविक होती है। ४. **सवित्रे स्वाहा**=सविता व निर्माणात्मक कर्मों में लगे रहने के लिए मैं स्वार्थत्याग करता हूँ। स्वार्थ में ग्रस्त होने पर हम ध्वंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं। ५. **वायवे**=इस निर्माणात्मक कर्मों में लगे रहने के लिए, गतिशील बने रहने के लिए **स्वाहा**=मैं उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ। ६. **विष्णवे स्वाहा**=(विष्लृ व्याप्तौ) अपनी मनोवृत्ति को व्यापक व उदार बनाने के लिए मैं स्वार्थ-त्याग करता हूँ। ७. **इन्द्राय स्वाहा**=जितेन्द्रिय बनने के लिए मैं प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता हूँ। ८. **बृहस्पतये**=देवताओं के भी गुरु—ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञानी बनने के लिए मैं स्वार्थत्याग करता हूँ। ९. इस ज्ञान को प्राप्त करके **मित्राय स्वाहा**=सबके साथ स्नेह करने के लिए स्वार्थत्याग करता हूँ। १०. **वरुणाय स्वाहा**=द्वेष-निवारण के लिए, अर्थात् द्वेष से दूर होने के लिए मैं स्वार्थत्याग करता हूँ।

भावार्थ—जब मनुष्य स्वार्थ से ऊपर उठता है और प्रभु के प्रति अर्पण की वृत्तिवाला बनता है तब वह अपने अन्दर 'अग्नि, सोम, अपां मोद, सविता, वायु, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, मित्र और वरुण' इन दस तत्त्वों को धारण करनेवाला बनता है। यही दशक उसका धर्म हो जाता है। वह इस दशलक्षण धर्म को धारण करता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**प्राणादयः**। छन्दः—**अत्यष्टिः**[क], **स्वराडत्यष्टिः**[ख]। स्वरः—**गान्धारः**॥

उननचास मरुत

[क]हिङ्कारायस्वाहा हिङ्कृतायस्वाहा क्रन्दतेस्वाहाऽवक्रन्दायस्वाहा प्रोथतेस्वाहा प्रप्रोथायस्वाहा गन्धायस्वाहा घ्रातायस्वाहा निविष्टायस्वाहोपविष्टायस्वाहा सन्दितायस्वाहा वल्गते[ख]स्वाहासीनायस्वाहा शयानायस्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धायस्वाहा विजृम्भमाणायस्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानायस्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥७॥

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**प्रयतवन्तो जीवादयः**। छन्दः—**भुरिग्धृतिः**[क], **भुरिगतिधृतिः**[र]। स्वरः—**ऋषभः**[क], **षड्जः**[र]॥

[क]यते स्वाहा धाव॑ते स्वाहोद्द्रावाय॒ स्वाहोद्द्रु॑ताय॒ स्वाहा॑ शूका॒राय॒ स्वाहा॒ शूकृ॑ताय॒ स्वाहा॒ निष॑ण्णाय॒ स्वाहोत्थि॑ताय॒ स्वाहा॑ ज॒वाय॒ स्वाहा॒ बला॑य॒ स्वाहा॑ वि॒वर्त्त॑मानाय॒ स्वाहा॒ विवृ॑त्ताय॒ स्वाहा॑ विधून्वा॒नाय॒ स्वाहा॒ [र]विधू॑ताय॒ स्वाहा॒ शुश्रू॑षमाणाय॒ स्वाहा॑ शृण्व॒ते स्वाहेक्ष॑माणाय॒ स्वाहेक्षि॑ताय॒ स्वाहा॒ वी॒क्षिताय॒ स्वाहा॑ निमे॒षाय॒ स्वाहा॒ यदत्ति॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ यत्पिब॑ति॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ यन्मू॒त्रं क॒रोति॒ तस्मै॒ स्वाहा॑ कुर्व॒ते स्वाहा॑ कृ॒ताय॒ स्वाहा॑॥८॥

१. छठे मन्त्र के अनुसार स्वार्थत्याग करने पर व प्रभु के प्रति अपना अर्पण करने पर अग्नि आदि तत्त्वों के शरीर में विकसित होने का उल्लेख था। अब सातवें व आठवें मन्त्र में उसी प्रकार स्वार्थत्याग से व प्रभु के प्रति अर्पण से शरीर में उननचास मरुतों व प्राणभेदों के ठीक से कार्य चलने का उल्लेख करते हैं। शरीर में ये प्राणवायु भिन्न-भिन्न रूप में होकर सारे शरीर की विविध क्रियाओं को सिद्ध करती है। ये भेद उननचास हैं—अतः ये प्राण=मरुत उननचास कहलाते हैं। इन उननचास मरुतों की क्रियाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि १. **हिङ्काराय स्वाहा**=(शुक्लमेव हिङ्कारः। जै०उ० १।३४।१) अपने जीवन को शुक्ल बनाने के लिए मैं स्वार्थत्याग करता हूँ। स्वार्थ ही मलिनता है। इसके त्याग से मेरा जीवन शुद्ध होता है। उठने पर सबसे पूर्व शोधन ही आवश्यक होता है, अतः इस शोध से ही मन्त्र को प्रारम्भ किया गया है। 'प्राणो वै हिङ्कारः' (श० ४।२।२।११)। प्राणशक्ति की वृद्धि के लिए मैं स्वार्थभाव से ऊपर उठता हूँ। स्वार्थभाव में भोगप्रवणता बढ़ती है और प्राणशक्ति का ह्रास होता है। 'वज्रो हिङ्कारः' (कौ० ३।२)। प्राणशक्ति की वृद्धि के द्वारा मैं अपने इस शरीर को वज्रतुल्य बनाता हूँ। २. **हिङ्कृताय स्वाहा**=जिसने अपना शोधन कर लिया है, प्राणशक्ति की वृद्धि की है तथा शरीर को वज्रतुल्य बनाया है, उसके लिए हम (सु+आह) शुभ शब्द बोलते हैं, प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। ३. **क्रन्दते**=(क्रदि आह्वाणे) प्रभु को पुकारनेवाले का **स्वाहा**=हम आदर करते हैं। ४. **अवक्रन्दाय**=प्रभु को नीचे—अपने अन्दर बुलाने के लिए हम **स्वाहा**=स्वार्थत्याग करते हैं। प्रातः उठकर शोधन की प्रक्रिया के बाद प्रभु का स्मरण व स्तवन ही चलना चाहिए। इस प्रभु के आह्वान से हमें शुद्ध बनने में सहायता मिलती है। ५. **प्रोथते**=(प्रोथृ पर्यापणे subdue, overcome) प्रभु-स्मरण के द्वारा कामादि शत्रुओं का विजय करनेवाले के लिए हम **स्वाहा**=आदर के शब्द बोलते हैं। ६. **प्रप्रोथाय स्वाहा**=वासना-विजय के प्रकृष्ट कार्य के लिए, इन शत्रुओं को जीतने की क्षमता प्राप्त करने के लिए मैं स्वार्थत्याग करता हूँ। ७. अब प्रभु-स्मरण के पश्चात् स्वाध्याय का क्रम आता है। उस स्वाध्याय में मैं विज्ञान के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता हूँ अथवा विज्ञान के द्वारा प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ता हूँ। इस **गन्धाय स्वाहा**=ज्ञान की गन्ध के लिए मैं स्वार्थत्याग करता हूँ। स्वार्थ से ऊपर उठकर ही मैं अपनी बुद्धि को शुद्ध करता हूँ और अपने में ज्ञान का सम्बन्ध कर पाता हूँ। ८. **घ्राताय स्वाहा**=इस ज्ञान-गन्ध का ग्रहण करनेवाले के लिए मैं आदरभाव धारण करता हूँ। ९. स्वाध्यायानन्तर **निविष्टाय**=अपने कार्यों में लग जानेवाले पुरुष के लिए मैं **स्वाहा**=शुभ शब्द बोलता हूँ। १०. इन कार्यों को करते समय **उपविष्टाय स्वाहा**=सदा प्रभु के समीप स्थित के लिए मैं

आदर के शब्द कहता हूँ। ११. इन कार्यों को करते हुए **सन्दिताय स्वाहा**=(सम्यक् दितं खण्डनं यस्य सः) वासनाओं व आलस्य की भावना का सम्यक् खण्डन करनेवाले के लिए हम आदर करते हैं। १२. **वल्गते स्वाहा**=आलस्य को छोड़कर मधुरता से गति करते हुए का हम आदर करते हैं। १३. **आसीनाय स्वाहा**=कर्म करने के बाद अब आराम के लिए बैठे हुए के लिए हम शुभ शब्द बोलते हैं। १४. **शयानाय स्वाहा**=लेटनेवाले के लिए हम शुभ शब्द बोलते हैं। १५. **स्वपते स्वाहा**=सोनेवाले के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं। १६. अब सोने के बाद **जाग्रते स्वाहा**=जागनेवाले के लिए हम शुभ शब्द बोलते हैं। १७. **कूजते स्वाहा**=जागने के बाद अव्यक्त रूप में, मानस जप के रूप में प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाले का हम आदर करते हैं १८. **प्रबुद्धाय स्वाहा**=अब खूब अच्छी प्रकार जागरित हो गये के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। १९. **विजृम्भमाणाय स्वाहा**=अब गात्रों का विविध नयन करनेवाले के लिए, अर्थात् सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों को फैलानेवाले के लिए हम शुभ शब्द बोलते हैं। २०. **विचृताय**=(चृती दीप्तौ) गात्रविनाम के द्वारा दीप्त होनेवाले का हम आदर करते हैं। २१. **संहानाय**=**'अत्रा जहाम अशिवा ये असन्'** इस मन्त्रभाग की भावना के अनुसार अशिव को छोड़नेवाले का हम आदर करते हैं। २२. **उपस्थिताय स्वाहा**=अशुभ को छोड़कर प्रभु के समीप पहुँचे हुए का हम आदर करते हैं। २३. **अयनाय स्वाहा**=(अयते) प्रभु की ओर जानेवाले का हम आदर करते हैं। २४. **प्रायणाय स्वाहा**=(प्रकृष्टमयते) सदा प्रकृष्ट मार्ग से जानेवाले का हम आदर करते हैं।

२५. **यते स्वाहा**=गतिशील का हम आदर करते हैं। २६. **धावते स्वाहा**=गतिशीलता के द्वारा अपना शोधन करनेवाले का हम आदर करते हैं। २७. **उद्द्रावाय स्वाहा**=उत्कृष्ट गतिवाले का हम आदर करते हैं। २८. **उद्द्रुताय**=जो विषयों से **उत्**=ऊपर (out) उठ गया है, उसका हम आदर करते हैं। २९. **शूकाराय स्वाहा**=शीघ्रता से कार्यों को करनेवाले के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं। ३०. **शूकृताय स्वाहा**=शीघ्रता से शिक्षित हुए का हम आदर करते हैं। ३१. **निषण्णाय**=अपने कार्यों में निश्चित रूप से स्थित का हम आदर करते हैं। ३२. **उत्थिताय स्वाहा**=उठ खड़े हुए के लिए, अर्थात् सदा कार्यों में उद्युक्त का हम आदर करते हैं। ३३. **जवाय**=वेगवान् के लिए, क्रियाओं में गतिवाले का हम आदर करते हैं। ३४. **बलाय स्वाहा**=क्रियाओं में सतत वेग के द्वारा उत्पन्न बल के लिए हम स्वार्थत्याग करते हैं। आलस्य=आराम को छोड़कर प्रबलता से कर्मों को करनेवाला ही सबल बनता है। **३५. विवर्त्तमानाय**=विशिष्ट रूप से क्रियाओं में चेष्टा करनेवाले का हम आदर करते हैं। ३६. **विवृत्ताय**=विशिष्ट वर्तन के कारण जो उत्कृष्ट चरित्रवाला बना है (विशिष्टं वृतं यस्य) उसके लिए हम आदर करते हैं। ३७. **विधूवानाय स्वाहा**=जो विशिष्ट वृत्तवाला बनकर बुराइयों को अपने से कम्पित करके दूर कर रहा है, उसके लिए शुभ शब्द कहते हैं। ३८. **विधूताय स्वाहा**=बुराइयों को कम्पित करते हुए जो 'विधूतपाप्मा' बन गया है, उसका हम आदर करते हैं। ३९. **शुश्रूषमाणाय स्वाहा**=विधूतपाप्मा बनने के लिए गुरुओं का उपदेश सुनने की इच्छावालों का तथा गुरुओं का उपासन करनेवाले का हम आदर करते हैं। ४०. **शृण्वते स्वाहा**=गुरुओं के उपदेश को सुननेवाले का लिए हम आदर करते हैं। ४१. **ईक्षमाणाय स्वाहा**=ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रकृति का सूक्ष्मता से निरीक्षण करनेवाले का हम आदर करते हैं। ४२. **ईक्षिताय स्वाहा**=प्रकृति के तत्त्वों के द्रष्टा का हम आदर करते हैं। ४३. **वीक्षिताय स्वाहा**=वीक्षित का—ठीक conecption बनानेवाले का हम आदर करते हैं। ४४. इस प्रकृति-निरीक्षण के बाद **निमिषाय स्वाहा** =आँख आदि के व्यापार को रोककर

अन्तःस्थित आत्मतत्त्व को देखनेवाले का हम आदर करते हैं। ४५. **यत् अत्ति तस्मै स्वाहा**=आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए शरीर को स्वस्थ रखने के उद्देश्य से जो खाता है, सात्त्विक भोजन करता है, अन्न का सेवन करता है उसका हम आदर करते हैं। ४६. **यत् पिबति तस्मै स्वाहा**=इसी उद्देश्य से जो सात्त्विक दूध आदि का पान करता है, उसका हम आदर करते हैं। ४७. **यत् मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा**=शरीर में से मूत्र आदि के क्षार मलांश को दूर करनेवाले प्राण का हम आदर करते हैं। ४८. **कुर्वते स्वाहा**=शोधनकार्य को करते हुए का हम आदर करते हैं और ४९. **कृताय स्वाहा** =मलादि के शोधनकार्य को कर चुके प्राण के लिए हम शुभ शब्द बोलते हैं। इस प्रकार की प्रशंसा करते हुए उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

भावार्थ—हमारे शरीरों में प्राण के ४९ भेद भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। उन्हीं से अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सब कार्य चलते हैं। प्राणों की क्रिया से ही स्वास्थ्य व सुबुद्धि प्राप्त होती है, अतः विविध रूपों में उल्लिखित इन सब कार्यों को करते हुए प्राणों के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं।

ऋषिः—**विश्वामित्रः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**।

भर्ग का वरण

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥९॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित हमारे सब प्राण ठीक कार्य करेंगे तो हम इस प्रार्थना के योग्य होंगे कि **सवितुः** =सकल जगदुत्पादक, सर्वैश्वर्यशाली **देवस्य**=सब दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभु के **तत् वरेण्यम्**=उस वरण करने योग्य **भर्गः**=तेज का **धीमहि**=ध्यान करें व धारण करें। शरीर में प्राणशक्ति के ठीक से कार्य न करने पर तेजस्विता का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। वस्तुतः संसार में जीव जब 'प्रभु की तेजस्विता' व 'प्रकृति के सौन्दर्य' में ग़लती से प्रकृति के सौन्दर्य का चुनाव कर बैठता है तब प्रेयमार्ग पर चलते हुए अधिकाधिक भोगों को जुटाता है और उनका आनन्द लेता हुआ अपनी शक्तियों को क्षीण कर बैठता है २. परन्तु प्रभु के तेज को अपना लक्ष्य बनाना ऐसा है **यः**=जो **नः**=हमारी **धियः**=बुद्धियों को **प्रचोदयात्**=प्रकृष्ट प्रेरणा देता है। प्रभु के तेज को अपना लक्ष्य बनानेवाला व्यक्ति कभी भोगमार्ग की ओर नहीं जाता और भोगमार्ग की ओर न जाने से क्षीणशक्ति नहीं होता। ३. संसार में भोगमार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति ही स्वार्थप्रधान होकर द्वेष में फँसता है। यह प्रभु के तेज का वरण करनेवाला सभी का मित्र होता है, प्रभु के वरेण्य भर्ग का वरण करनेवाला 'विश्वामित्र' होता है।

भावार्थ—हम प्रभु के तेज का वरण करें। यह लक्ष्य हमारी बुद्धियों को शुद्ध बनाए रक्खेगा।

ऋषिः—**मेधातिथिः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**।

'चेत्ता-देवता-पदम्'

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये। स चेत्ता देवता पदम्॥१०॥

१. गतमन्त्र का 'विश्वामित्र' बड़ी समझदारी से ठीक मार्ग पर चलने के कारण प्रस्तुत मन्त्र का ऋषि 'मेधातिथि'=(मेधया अतति) समझदारी से चलनेवाला कहलाता है। यह कहता है कि मैं **ऊतये**=अपनी रक्षा के लिए उस प्रभु को **उपह्वये**=पुकारता हूँ जो

हिरण्यपाणिम्='हिरण्यं पाणौ यस्य' हाथ में हिरण्य=सोना लिये हुए हैं। उस हिरण्यपाणि के प्राप्त हो जाने पर मुझे धन की आवश्कता ही क्या रहेगी? **सवितारम्**=वे तो सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक हैं अथवा सम्पूर्ण ऐश्वर्योंवाले हैं। उस प्रभु को पा लेने पर ऐश्वर्य की क्या कमी रहेगी? हम प्रभु के अतिथि बनेंगे तो उस सर्वव्यापक विष्णु की पत्नी 'लक्ष्मी' ही हमारा आतिथ्य करेंगी। लक्ष्मी की हमें कमी क्यों होगी? 'हिरण्यपाणि' की भावना यह भी है कि वे प्रभु 'हितरमणीय पाणि' वाले हैं। उन प्रभु का हाथ हमारे सिरों पर होगा तो हमारा कल्याण-ही-कल्याण होगा। २. **सः**=वे प्रभु **चेत्ता**=सर्वज्ञ हैं, सभी संज्ञानोंवाले हैं। इस प्रभु की उपासना मेरे ज्ञान को भी बढ़ानेवाली होगी। ३. **देवता**=वे देवता हैं। **'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा'**=वे प्रभु सब-कुछ देनेवाले हैं, ज्ञान से दीप्त हैं, सभी को दीप्ति देकर चमकानेवाले हैं। ४. **पदम्**=**'पद्यते मुनिभिर्यस्मात् तस्मात् पद उदाहृतः'** वे प्रभु जानने योग्य हैं, अन्तिम लक्ष्य वे प्रभु ही हैं। उस प्रभु के ही समीप हमें पहुँचना है। वहाँ न पहुँचने तक मनुष्य भटकता ही रहता है। **'सा काष्ठा सा परागतिः'**=वे प्रभु ही यात्रा का चरम लक्ष्य हैं। वहीं शान्ति हैं, प्रभु को न पानेवालों को शान्ति कहाँ। **'तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्'** प्रभुनिष्ठ को ही शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।

भावार्थ—प्रभु 'हिरण्यपाणि, सविता-चेत्ता-देवता व पद' हैं। उस प्रभु को ही प्राप्त करने के लिए यत्नशील होना चाहिए।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

मही सुमति

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्वामहे। सुमतिꣳसत्यराधसम्॥११॥

१. **देवस्य**=सब दिव्यगुणों के पुञ्ज, देनेवाले, चमकनेवाले व चमकानेवाले **चेततः**=सर्वज्ञ **सवितुः**=सकल जगदुत्पादक, सर्वैश्वर्यशाली प्रभु की **महीम्**=महनीय महिमा को प्राप्त करानेवाली **सत्यराधसम्**=सत्य को सिद्ध करनेवाली (सत्यं राधयति) अथवा सत्य, अविनष्ट धनवाली (सत्यं राधो धनं यस्याः ताम्) **सुमतिम्**=शोभनबुद्धि को **प्रहवामहे**=प्रकर्षेण प्रार्थना करते हैं। २. प्रभु की यह कल्याणी मति वेद में प्रकाशित हुई है, उसे प्राप्त करके हम सचमुच अपने जीवनों को महिमावाला व सत्यधनवाला बना पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु देव हैं, चेत्ता हैं। उनकी कल्याणी मति को प्राप्त करके हम महिमाशाली व सत्यरूप धन को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

सुमति संवर्धन

सुष्टुतिꣳसुमतीवृधो रातिꣳसवितुरीमहे। प्र देवाय मतीविदे॥१२॥

१. **सुमतीवृधः**=शोभन बुद्धि का वर्धन करनेवाले, **सवितुः**=सकल जगदुत्पादक, सर्वैश्वर्यशाली प्रभु की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को तथा **रातिम्**=दान को **ईमहे**=चाहते हैं—याचना करते हैं। वे सुमति का वर्धन करनेवाले प्रभु हमारी बुद्धियों को ऐसा बनाएँ कि हम प्राकृतिक भोगों में आसक्त होकर उसे भूल न जाएँ। सुमति को प्राप्त करके इन प्रत्येक वस्तु में सब प्राकृतिक भोग्य वस्तुओं को शरीरपोषण के दृष्टिकोण से मात्रा में उपयुक्त करते हुए प्रत्येक वस्तु में प्रभु की महिमा को देखें और उसका स्तवन करें। वे प्रभु सविता हैं, सभी वस्तुओं को जन्म देनेवाले हैं, सारा ऐश्वर्य उन्हीं का है। उनकी शरण में आकर

उस प्रभु की राति से, दान से, हम वञ्चित थोड़े ही रहेंगे। २. यह प्रभु का स्तवन **प्रदेवाय**=हमें प्रकृष्ट देव बनाने के लिए हो। उन-उन गुणों से प्रभु का स्तवन करते हुए हम भी वैसा ही बनने का प्रयत्न करें और उस महान् देव के मार्ग पर चलते हुए देव बन जाएँ। ३. **मतीविदे**=यह प्रभु-स्तवन बुद्धि की प्राप्ति के लिए हो। यह स्तवन हमें भोगमार्ग से बचाकर उत्कृष्ट बुद्धिवाला बनाए। भोगासक्ति शरीर व बुद्धि दोनों ही को दुर्बल करती है।

भावार्थ—उस सविता का स्तवन करते हुए हम उत्कृष्ट दिव्य गुणों को प्राप्त करें और बुद्धि का वर्धन करनेवाले हों।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

देव-वीति

रातिꣳसत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये। आसवं देववीतये॥१३॥

१. **रातिम्**=सब आवश्यक पदार्थों को देनेवाले दाता को **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक **सवितारम्**=सकल जगदुत्पादक, सर्वैश्वर्ययुक्त प्रभु को **महे**=(पूजनीय—उ०) पूजता हूँ और **उपह्वये**=पुकारता हूँ, प्रार्थना करता हूँ। प्रभु की पूजा से मैं भी प्रभु का छोटा रूप बन पाऊँगा। प्रभु 'राति' हैं, दाता हैं, मैं भी दाता बनूँगा, सारा स्वयं खा जानेवाला न होऊँगा। प्रभु 'सत्पति' हैं, मैं भी उत्तम कार्यों का रक्षक बनूँगा, सदा उत्तम कार्य करनेवाला होऊँगा। प्रभु 'सविता' हैं, मैं भी सदा निर्माण के कार्यों में लगूँगा। २. **आसवम्**=उस समन्तात् ऐश्वर्ययुक्त प्रभु को मैं पुकारता हूँ कि **देववीतये**=मेरे अन्दर दिव्य गुणों का प्रकाश हो, मैं दिव्य गुणों को प्राप्त करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु 'राति-सत्पति, सविता व आसव' हैं। हम इस प्रभु की ही पूजा करें, प्रार्थना करें, जिससे हममें दिव्य गुणों का प्रादुर्भाव हो। इन दिव्य गुणों से हम भी समन्तात् ऐश्वर्ययुक्त हों।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**सविता**। छन्दः—**पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

मति-आसव-भग

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्। धिया भगं मनामहे॥१४॥

१. **सवितुः**=सकल जगदुत्पादक, सर्वैश्वर्ययुक्त **देवस्य**=दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभु की **मतिम्**=बुद्धि को **मनामहे**=(याचामहे) हम माँगते हैं। उस प्रभु की कल्याणी बुद्धि प्राप्त होने पर हम भी **सविता**=निर्माण के कार्यों के करनेवाले बनने का प्रयत्न करेंगे और उस कल्याणी मति के प्राप्त होने पर सदा उत्कृष्ट मार्ग से चलते हुए हम देव बनने के लिए यत्नशील होंगे। २. हम प्रभु के **आसवम्**=उस व्यापक ऐश्वर्य को चाहते हैं, जो ऐश्वर्य **विश्वदेव्यम्**=सब दिव्य गुणों की प्राप्ति में सहायक होता है। इस ऐश्वर्य के होने पर मनुष्य का बहुमूल्य जीवन जीविका-प्राप्ति में व्यर्थ व्यतीत न होकर अध्यात्म उन्नति में लगता है। 'आसवं' शब्द का अर्थ प्रेरणा भी है, हम उस प्रेरणा की याचना करते हैं जो हमें सब दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है। ३. **धिया**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **भगम्**=ऐश्वर्य को **मनामहे**=माँगते हैं। कर्मों के द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य ही हमारे जीवन में सद्गुणों को जन्म देनेवाला होता है। बिना श्रम के प्राप्त ऐश्वर्य मनुष्य के पतन का कारण होता है।

भावार्थ—हम सवितादेव की 'सुमति-प्रेरणा व ऐश्वर्य' को प्राप्त करनेवाले हों।

ऋषिः—**सुतम्भरः**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

स्तोम द्वारा बोधन

अग्निꣳस्तोमेन बोधय समिधानोऽअमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत्॥१५॥

१. **अग्निम्**=उस अग्रेणी परमात्मा को **स्तोमेन**=स्तुतिसमूह से **बोधय**=जागरित कर। जब हम स्तवन के द्वारा उस प्रभु की भावना को हृदय में उद्बुद्ध करते हैं तब वह प्रभु हमारी अग्रगति का कारण बनते हैं। २. वे प्रभु **अमर्त्यम्**=विषयों के पीछे न मरनेवाले इस स्तोता को **समिधानः**=दीप्त करते हैं। जब व्यक्ति प्रभु का स्तवन करनेवाला बनता है तब उसकी चित्तवृत्ति वैषेयिक नहीं होती। वह विषयों को विष समझता हुआ उनसे दूर ही रहता है। इसकी चित्तवृत्ति को शुद्ध करके वे प्रभु इसे ज्ञान से समिद्ध कर देते हैं तथा ३. **नः**=हमें **देवेषु**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **हव्या दधत्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। उन सात्त्विक पदार्थों का सेवन करते हुए हम मन की शुद्धि से दिव्य गुणोंवाले होते हैं।

भावार्थ—मनुष्य स्तवन के द्वारा अपने हृदय में प्रभु की भावना को जागारित करे। यह प्रभु-स्मरण विषयों के पीछे मरने से बचाता है और हृदयों को प्रकाश से दीप्त करता है। प्रभु हव्य=यज्ञिय पवित्र पदार्थों को प्राप्त कराके दिव्य गुणों से युक्त करते हैं।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

प्रज्ञापूर्वक कर्मों से प्रभु-प्राप्ति

स हव्यवाडमर्त्यऽउशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्वति॥१६॥

१. **सः**=वह **अग्निः**=अग्रेणी=सब उन्नतियों का साधक **धिया**=बुद्धिपूर्वक कर्मों से **समृण्वति** =प्राप्त होता है। प्रभु-प्राप्ति के लिए एकमात्र उपाय 'बुद्धिपूर्वक कर्म करना' है। अकर्मण्य को प्रभु की प्राप्ति नहीं होती, अतः मनुष्य को कर्मशील तो बनना ही है। वे कर्म उसे बुद्धिपूर्वक करने हैं। 'मनुष्य' का अर्थ **'मत्वा कर्माणि सीव्यति'** है—विचारकर कर्मों को करता है। २. वे प्रभु **हव्यवाट्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं। हमें उत्तम यज्ञिय पदार्थों को प्राप्त कराके इन पदार्थों के सेवन से वे हमें शुद्ध बुद्धिवाला बनाते हैं। ३. **अमर्त्य**=वे प्रभु अमर्त्य हैं, उनके उपासन से हम भी अमर्त्य बनते हैं, ४. **उशिक्**=मेधावी हैं अथवा जीव का हित चाहनेवाले हैं। ५. **दूतः**=उसका हित करने के लिए वे उसे तपस्या की अग्नि में सन्तप्त करते हैं। तप की अग्नि में सन्तप्त होकर ही तो हम शुद्ध जीवनवाले बनेंगे। इन तपों को सामान्य लोग कष्ट समझते हैं और वे धर्मात्माओं को दुःखपतित समझ विचित्र-सी धारणाएँ बना लेते हैं। ६. वे प्रभु **चनोहितः**=(धनसा हितः) अन्न द्वारा हममें निहित होते हैं। अन्न की शुद्धि होने पर अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण के शुद्ध होने पर वहाँ प्रभु का निवास होता है।

भावार्थ—हम उस प्रभु को प्रज्ञापूर्वक कर्मों द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करें जो प्रभु हमें हव्य पदार्थ प्राप्त कराते हैं, अमर्त्य बनाते हैं, हमारे भले की ही कामना करते हैं, तप की अग्नि में हमें तपाते हैं तथा सात्त्विक अन्न के सेवन से हमारे हृदयों में निहित होते हैं।

ऋषिः—**विश्वरूपः**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**निचृद्गायत्री**। स्वरः—**षड्जः**॥

अग्नि का पुरःस्थापन

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ२॥ऽआ सादयादिह॥१७॥

१. इस संसार-यात्रा में कार्य करते हुए हम **दूतम्**=तपोऽग्नि में सन्तप्त करनेवाले

अग्निम्=हमें निरन्तर आगे ले-चलनेवाले प्रभु को **पुरः दधे**=सामने रखते हैं, अर्थात् प्रभु के अविस्मरणपूर्वक ही हमारे सब कार्य होते हैं। इसी कारण उन कार्यों में अपवित्रता नहीं होती। २. **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले परमात्मा की मैं **उपब्रुवे**=प्रार्थना करता हूँ। प्रातः-सायं उसके समीप उपस्थित होकर यही याचना करता हूँ कि 'हे सब अन्नों के पति प्रभो! हमें रोगरहित व बलकारक अन्न दीजिए'। उन सात्त्विक पदार्थों को प्राप्त कराइए जिनके सेवन से हमारे अन्तःकरण शुद्ध हों। ३. उनको शुद्ध करके हे प्रभो! आप **इह**=इस मानव-जीवन में, शुद्ध हृदय में, **देवान्**=दिव्य गुणों को **आसादयात्**=प्राप्त कराएँ। दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए शुद्ध-हृदयता आवश्यक है।

भावार्थ—हम कर्मों को करते हुए प्रभु को न भूलें। प्रभु से हव्य (सात्त्विक) पदार्थों की याचना करें। प्रभु हमारे शुद्ध हृदयों में दिव्य गुणों की स्थापना करें। इस प्रकार प्रभु का सदा स्मरण करने से हम प्रभु के ही छोटे रूप 'विश्वरूप' बनते हैं।

ऋषिः—**अरुणत्रसदस्यू**। देवता—**पवमानः**। छन्दः—**पिपीलिकामध्याविराडनुष्टुप्**।
स्वरः—**गान्धारः**॥

अरुण-त्रसदस्यु

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥१८॥

१. हे **पवमान**=मेरे हृदय को पवित्र करनेवाले प्रभो! **हि**=निश्चय से आप **सूर्यं अजीजनः**=मेरे मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञान के सूर्य को उदित करते हैं। २. मैं आपके आदेश के अनुसार **शक्मना**=शक्ति के हेतु से **पयः**=दूध को **विधारे**=धारण करता हूँ, अर्थात् दूध आदि पवित्र पदार्थों के सेवन से शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता हूँ। ३. **गोजीरया**=(इमे लोका गौः—शतपथ० ६।५।२।१७) समस्त लोकों को जीवन देनेवाली **पुरन्ध्या**=(पुरं बहु दधाति) बहुतों को धारण करनेवाली शक्ति से **रंहमाणः**=इस जीवन-यात्रा में मैं आगे-और-आगे बढ़ता हूँ। मेरे सब कार्य इन पृथिवीस्थ (गो) प्राणियों के मिलाने के हेतु से तथा बहुत के धारण के दृष्टिकोण से ही हों। **'यद्भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमिति धारणा'**= जो अधिक-से-अधिक प्राणियों का हित है वही तो सत्य है। मेरे सब कार्य भी पृथिवीस्थ प्राणियों के जिलानेवाले व बहुत का धारण करनेवाले हों। ४. इस प्रकार मेरा सारा जीवन गतिशील व्यक्ति का जीवन हो (ऋ गतौ) मैं 'अरुण' बनूँ। मेरी इस 'गतिशीलता' से दास्यववृत्तियाँ मुझसे भयभीत होकर दूर ही रहें और मैं मन्त्र का ऋषि 'त्रसदस्यु' बनूँ।

भावार्थ—पवित्रता से ज्ञान दीप्त होता है। शक्ति के लिए हमें सात्त्विक दुग्ध आदि पदार्थों का प्रयोग करना है। हम सदा पृथिवी आदि लोकों के प्राणियों के जीवन के उद्देश्य से तथा बहुत के धारण के उद्देश्य से क्रियाओं को करनेवाले बनें।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**अग्निः**। छन्दः—**भूरिग्विकृतिः**। स्वरः—**मध्यमः**॥

विभूः-प्रभूः

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वीसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि। ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवाऽआशापालाऽएतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳरक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९॥

१. **मात्रा**=तू माता से **विभूः**=व्यापक वृत्तिवाला=उदारवृत्तिवाला बना है। माता से तूने व्यापक हृदयता के संस्कार प्राप्त किये हैं। २. **पित्रा प्रभूः**=पिता से तूने शक्ति (प्रभाव) को प्राप्त किया है। ३. इस प्रकार माता-पिता से विशाल हृदय व शक्ति को प्राप्त करके **अश्वः असि**=तू कर्मों में व्याप्त होनेवाला है, अर्थात् तू सदा कर्मशील जीवन बिताता है। **हयः असि**=(हय गतौ) तू गतिशील है। गतिशील ही क्या, **अत्यः असि**=(अत सातत्यगमने) तू निरन्तर गतिशील है। गति तो तेरा स्वभाव ही बन गया है। ४. इस गतिशीलता के कारण **मयः**=तू सुखरूप है। गतिशीलता के कारण तेरा जीवन सुखी है। ५. **अर्वा असि**=(अर्वति हिनस्ति च) सब बुराइयों का तू संहार करनेवाला है और बुराइयों के संहार के द्वारा ही **सप्तिः असि**=(सप सम्बन्धे) प्रभु से अपना सम्बन्ध जोड़नेवाला है। प्रभु के साथ सम्बद्ध होकर **वाजी असि**=तू शक्तिशाली बनता है। प्रभु की शक्ति का तुझमें प्रवाह होता है। ६. शक्तिसम्पन्न बनकर **वृषा असि**=तू लोगों पर सुखों की वर्षा करनेवाला बनता है। **नृमणा असि**=(नृषु मनो यस्य) तेरा मन सदा लोगों में रहता है, अर्थात् तू सदा उनकी उन्नति व सुख के वर्धन का विचार करता है। ७. इसके लिए तू **ययुः नाम असि**=खूब ही गतिशील बना है। लोगों की उन्नति व सुख के लिए अतिशयित प्रयत्नवाला होता है। **शिशुः नाम असि**=(श्यति कृशं करोति) अपने प्रयत्नों से तू लोगों के कष्टों को अत्यन्त क्षीण करनेवाला बनता है। अथवा (श्यति तनूकरोति) तू अपनी बुद्धि को भी अत्यन्त सूक्ष्म बनाता है, जिससे ठीक विचार से तू ठीक कार्य कर सके। ८. प्रभु कहते हैं कि तू **आदित्यानां पत्वा अन्विहि**=आदित्यों के मार्ग से चलनेवाला बन। आदित्यों का मार्ग यह है कि ये सर्वत्र विचरते हुए अच्छाई को ग्रहण करते हैं और बुराई को वहीं रहने देते हैं, बुराई का ध्यान नहीं करते। इस मार्ग पर चलने से प्रजा में कल्याण-ही-कल्याण होगा, सब लड़ाई-झगड़े समाप्त हो जाएँगे। ९. हे **आशापालाः**=इस **'अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः'** की सब दिशाओं से रक्षा करनेवाले (आशा=दिशा) **देवाः**=देवो! **एतम्**=इस **अश्वम्**=शक्तिशाली तथा कर्मों में व्याप्त होनेवाले **प्रोक्षितम्**=जिसके शरीर में वीर्य का सिञ्चन हुआ है, वस्तुतः शरीर में वीर्य का सिञ्चन करके ही यह शक्तिशाली बना है, **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए तथा **मेधाय**=यज्ञरूप उत्तम कर्म के लिए **रक्षत**=सुरक्षित करो। 'मुख, पायु, उपस्थ व ब्रह्मरन्ध्र' ये चार मुख्य द्वार हैं। इनके अधिष्ठातृदेव ही आशापाल देव हैं। इनके कार्य के ठीक होने पर मनुष्य का जीवन सुरक्षित रहता है, वह बीमारियों से पीड़ित नहीं होता। वह वीर्य को शरीर में ही सुरक्षित करके कर्मों में प्रवृत्त होता है। १०. **इह**=इस उल्लिखित जीवन में **रन्तिः**=आनन्द है। **इह रमताम्**=मनुष्य को चाहिए कि वह इसमें ही रमण करे, आनन्द का अनुभव ले। **इह**=इस जीवन में **धृतिः**=दृढ़ता व कष्टों से न घबराना होता है। **इह स्वधृतिः**=इस जीवन में हम आत्मतत्त्व का धारण-दर्शन करते हैं। **स्वाहा**=अतः इस जीवन के लिए हम प्रशंसा के शब्द कहते हैं। इसी जीवन को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। इसके लिए अपने को दे डालते हैं। यही हमारा ध्येय हो जाता है।

भावार्थ—हम उदार हृदय व शक्तिशाली बनकर सदा क्रियाशील बनें। अपने को पवित्र कर प्रभु से अपना सम्बन्ध स्थापित करें। इस सम्बन्ध से शक्तिशाली बनकर लोकसेवा के कार्य में लग जाएँ। सर्वत्र अच्छाई को ग्रहण करके आगे बढ़ते चलें। इसी जीवन में आनन्द-प्राप्ति, कष्ट-सहनशक्ति व आत्मधारण है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**प्रजापत्यादयः**। छन्दः—**भुरिग्धृतिः**[क], **निचृदतिधृतिः**[र]।
स्वरः—**षड्जः**॥

समर्पण व स्वार्थत्याग

[क]काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञाताया॑दित्यै स्वाहादि॑त्यै म॒ह्यै स्वाहादि॑त्यै सुमृडी॒कायै स्वाहा सर॑स्वत्यै स्वाहा सर॑स्वत्यै पाव॒कायै स्वाहा [र]सर॑स्वत्यै बृह॒त्यै स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॑ पू॒ष्णे प्र॑प॒थ्या॒य स्वाहा॑ पू॒ष्णे न॒रन्धि॑षाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपा॑य स्वाहा त्वष्ट्रे पुरु॒रूपा॑य स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूय॒पाय स्वाहा विष्णवे शिपिवि॒ष्टाय स्वाहा॑॥२०॥

१. **काय**='को हि प्रजापतिः' (श० ६।२।२।५) प्रजापति के लिए **स्वाहा**=तू अपने को अर्पित करनेवाला बन। **कस्मै स्वाहा**=आनन्दस्वरूप परमात्मा के लिए तू अपने को अर्पित करनेवाला बन। **कतमस्मै स्वाहा**=अत्यन्त आनन्दस्वरूप परमात्मा के लिए तू अपने को अर्पित करनेवाला बन। २. **आधिम्**=(Reflection=धर्मचिन्ता=अध्यात्म-विचार) अपने सारे विचार को **आधीताय**=स्वरूपचिन्तन के लिए अथवा इस संसार के तत्त्वचिन्तन के लिए **स्वाहा**=अर्पित कर, अर्थात् तू सदा पुरुष व प्रकृति का स्वरूपचिन्तन करनेवाला बन। **मनः**=अपने मन को **प्रजापतये स्वाहा**=प्रजापति के लिए अर्पित कर। **चित्तम्**=अपने चित्त को **विज्ञाताय**=विज्ञान की प्राप्ति के लिए **स्वाहा**=अर्पित कर। ३. **अदित्यै**=अखण्डन के लिए तू **स्वाहा**=स्वार्थ को त्यागनेवाला बन। स्वार्थत्याग से ही तुझे पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होगा। इस **अदित्यै**=अदीना देवमाता (नि० ५।२२) के लिए जोकि **मह्यै**=महनीय है, तेरे जीवन को महत्त्वपूर्ण बनाएगी, उसके लिए **स्वाहा**=तू स्वार्थत्याग करनेवाला बन। स्वार्थ मनुष्य को दीन बनाता है, स्वार्थ से ऊपर उठकर हम दिव्य गुणों को प्राप्त करते हैं। इस **अदित्यै**=वेदवाणी के लिए (नि०१।४) तू **स्वाहा**=अपने को अर्पित कर जो **सुमृडीकायै**=तेरे जीवन को बड़ा सुखी बनाएगी। ४. **सरस्वत्यै**=ज्ञानाधिदेवता की आराधना के लिए **स्वाहा**=तू अपने को अर्पित कर। **सरस्वत्यै**=उस ज्ञानाधिदेवता के लिए तू अपने को **स्वाहा**=अर्पित कर जो **पावकायै**=पवित्र करनेवाली है। उस **सरस्वत्यै**=ज्ञानाधिदेवता के लिए तू **स्वाहा**=स्वार्थत्याग कर जो **बृहत्यै**=तेरे वर्धन का कारण होगी। ५. **पूष्णे**=पोषण की देवता के लिए तू **स्वाहा**=स्वार्थ का त्याग कर। स्वार्थत्याग शरीर के उत्तम पोषण का कारण बनता है। **पूष्णे स्वाहा**=उस पोषण के लिए तू निःस्वार्थ हो जो **प्रपथ्याय**=उत्कृष्ट मार्ग पर चलने के लिए सहायक होता है। **पूष्णे स्वाहा**=उस पोषण के लिए तू स्वार्थ से ऊपर उठ जो **नरन्धिषाय**=(नरान् दधाति धारयति—उ०) मनुष्यों का धारण करता है। स्वार्थ से ऊपर उठकर ही मनुष्य लोकहित कर सकता है और यह लोकहित ही (नरान् दिधेष्टि शब्दयति उदयेन—म०) मनुष्य के चतुर्दिक् प्रवाही यश का कारण बनता है। ६. अब ज्ञान व पुष्ट शरीर को प्राप्त करके **त्वष्ट्रे स्वाहा**=निर्माण की देवता के लिए तू अपने को अर्पित कर, अर्थात् निर्माण के कार्यों में लग जा। उस **त्वष्ट्रे स्वाहा**=निर्माण की देवता के लिए तू अपने को अर्पित कर जो **तुरीपाय**=(तूर्णं धारया पाति—उ०) शीघ्रता से रक्षा करनेवाला है। **त्वष्ट्रे**=उस निर्माण की देवता के लिए **स्वाहा**=तू अपने को अर्पित कर जो **पुरुरूपाय**=(पुरुणि रूपाणि यस्य) बड़े उत्तम रूपों को प्राप्त करानेवाली है। यदि राष्ट्र में सब व्यक्ति निर्माण के कार्यों

में लग जाएँ तो जहाँ राष्ट्र का शीघ्र ही कल्याण हो जाएगा वहाँ राष्ट्र को बड़ा सुन्दर रूप प्राप्त होगा। देश की आकृति ही बदल जाएगी। सब जगह 'सुख, सौन्दर्य व शान्ति' का राज्य हो सकेगा। ७. **विष्णवे स्वाहा**=(विष्लृ व्याप्तौ) व्यापक मनोवृत्ति के लिए तू स्वार्थत्याग कर। व्यापकता को तभी प्राप्त होंगे जब स्वार्थ को समाप्त करेंगे। उस **विष्णवे**=व्यापक, उदार मनोवृत्ति के लिए **स्वाहा**=तू स्वार्थत्याग कर जो **निभूयपाय**=(नीचैर्भूत्वा यः पाति—उ०) नम्र बनकर सबका रक्षण करती है। उदार वृत्तिवाला पुरुष रक्षणादि कार्यों में प्रवृत्त होता है, परन्तु इन कार्यों को करते हुए सदा नम्र बना रहता है। उस **विष्णवे स्वाहा**=उदार मनोवृत्ति के लिए निःस्वार्थ बन जो **शिपिविष्टाय**=(शिपिषु अक्रोशत्सु प्राणिषु प्रविष्टाय—द०) उन-उन क्लेशों से पीड़ित व क्रन्दन करते हुए प्राणियों में प्रवेश करता है तथा अज्ञानवश उनसे किये गये आक्रोशों का ध्यान न करते हुए उनके हित में लगा रहता है। ये 'विष्णु' वृत्तिवाले लोग 'तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानाम्' लोगों से दी गई गालियों को सदा सहते हैं।

भावार्थ—हम उस प्रभु के लिए अपना अर्पण करें जो आनन्दस्वरूप है। स्वरूप के स्मरण के लिए हमारा चिन्तन हो, मन प्रजापति में लगा हो, ज्ञान की रुचि हो, अदीना देवमाता, सरस्वती, पूषा, त्वष्टा व विष्णु के हम आराधक बनें।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः**। देवता—**विद्वान्**। छन्दः—**आर्ष्यनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**।

देव-सख्य मित्रता

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्।
विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑॥२१॥

१. प्रस्तुत मन्त्र का ऋषि 'स्वस्त्यात्रेय' है। कल्याण को प्राप्त उत्तम स्थितिवाला, काम-क्रोध-लोभ से दूर। इसका मन्तव्य है कि **विश्वः**=इस संसार में प्रविष्ट **मर्तः**=मनुष्य **नेतुः**=सबका प्रणयन करनेवाले **देवस्य**=दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभु की **सख्यम् वुरीत**=मित्रता का वरण करे। संसार में प्रकृति की मित्रता का वरण करके ही मनुष्य उसके पाँवों तले रौंदा जाता है। २. परन्तु संसार के इस स्वरूप को देखता हुआ भी **विश्वः**=सब मनुष्य **रायः**=धनों को ही **इषुध्यति**=चाहता है। धन का दास बनकर मनुष्य सचमुच अपना दासत्व=क्षय (दसु उपक्षये) सिद्ध कर लेता है। यह लक्ष्मी का वाहन उल्लू बन जाता है 'उत्=उत्कर्षं लुनाति'=यह अपने सब उत्कर्ष को खो बैठता है। इसका धन का दास बनना इसके निधन (मृत्यु) का कारण हो जाता है। ३. यह भी ठीक है कि इस संसार में धन के बिना कोई कार्य नहीं चलता, अतः वेद कहता है कि **द्युम्नम्**=इस यज्ञ के कारणभूत धन का भी **वृणीत**=वरण करो, परन्तु **पुष्यसे**=उतना ही जितना कि पोषण के लिए पर्याप्त हो। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वरण किया गया धन हमारे पतन का कारण नहीं बनता, उसी प्रकार जैसे भोजन शरीर का रक्षण ही करता है। यह अतिभोजन ही है जो शरीर को हानि पहुँचाता है। ४. अतः हम धन के दास न बन जाएँ, इसके लिए हम **स्वाहा**=स्वार्थत्याग की वृत्तिवाले बनें।

भावार्थ—इस संसार में हमारी उत्तम स्थिति व कल्याण तभी होगा जब हम प्रभु की मित्रता का वरण करेंगे और धन के दास न बन जाएँगे। धन को हम उतना ही चाहें जितना कि शरीर-पोषण के लिए आवश्यक हो।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**लिङोक्ताः**। छन्दः—**स्वराडुत्कृतिः**। स्वरः—**षड्जः**॥

आदर्श राष्ट्र

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्युः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥२२॥

१. 'गतमन्त्र के अनुसार धन का दास न बनकर प्रभु का मित्र बनने पर राष्ट्र कैसा बनेगा' इसका चित्रण करते हुए कहते हैं कि हे **ब्रह्मन्**=हमारी सब वृद्धियों के कारणभूत परमात्मन्! आपकी कृपा से **राष्ट्रे**=हमारे राष्ट्र में **ब्राह्मणः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **ब्रह्मवर्चसी**=यज्ञाध्ययनशील **आजायताम्**=पूर्ण रूप से हो, अर्थात् हमारे राष्ट्र के ब्राह्मण सदा यज्ञों में व अध्ययन में प्रवृत्त रहें, उनकी रुचि यज्ञाध्ययन की ही हो। २. **राजन्यः**=क्षत्रिय **शूरः**=शूर हो, 'शूर विक्रान्तौ', वीरता के कर्म करनेवाला हो। **इषव्यः**=(इषुषु साधुः) अस्त्रविद्या में कुशल हो। **अतिव्याधी**=शत्रुओं को अतिशयेन विद्ध करनेवाला हो। **महारथः**=यह महारथ **जायताम्**=हो, अकेला ही हज़ारों के साथ युद्ध करने की क्षमता रखता हो। ३. वैश्यों के ठीक कार्य करने के कारण इस राष्ट्र में **धेनुः दोग्ध्री**=गौवें बड़ी दुधार हों, **अनड्वान् वोढा**=बैल भारवहन-क्षम हो, **सप्तिः आशुः**=घोड़े शीघ्रता से अपने मार्ग का व्यापन करनेवाले हों। ४. घरों में **योषा**=पत्नी **पुरन्धिः**=रूपादिगुण समन्वित शरीर को धारण करनेवाली हो अथवा (पुरुम् दधाति—द०) बहुत का, घर के सब सभ्यों का धारण करनेवाली हो। ५. **अस्य यजमानस्य**=इस यज्ञशील पुरुष का **वीरः**=पुत्र—सन्तान **जिष्णुः**=सदा जयशील, विजेता बने, **रथेष्ठाः**=रथे स्थितः=सदा रथ पर आरुढ़ होनेवाला हो, **सभेयः**=(सभायां साधुः) सभ्य व्यवहारवाला हो। संक्षेप में सन्तान वीर, विजेता, रथेष्ठ व सभ्य बने। इस शरीररूप रथ को पूर्णरूप से वश में करनेवाले हो। ६. **नः निकामे-निकामे**=(नितरां कामनायां सत्याम्—म०) हमारी निश्चित कामना होने पर **पर्जन्यः वर्षतु**=बादल वर्षा करनेवाले हों। जब-जब हमें अन्नादि के दृष्टिकोण से वर्षा की आवश्यकता हो तब-तब हमारे राष्ट्र में पर्जन्यदेव वृष्टि करनेवाले हों। वस्तुतः जब राष्ट्र में ब्राह्मणादि वर्ग अपना कार्य ठीक से नहीं करता तब अनावृष्टि आदि आधिदैविक आपत्तियाँ आया करती हैं। बादलों के ठीक बरसने से **नः ओषधयः**=हमारी सब ओषधियाँ **फलवत्यः**=फलवाली होकर **पच्यन्ताम्**=परिपक्व हों और इस प्रकार **नः**=हमारा **योगक्षेमः**=योगक्षेम **कल्पताम्**=क्लृप्त हो, सिद्ध हो। अप्राप्त की प्राप्ति 'योग' है, प्राप्त का रक्षण 'क्षेम' है। आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि व उनका रक्षण 'योगक्षेम' कहलाता है। 'राष्ट्र में सबका 'योगक्षेम' ठीक से चले, यही राष्ट्र की उत्तमता है। आदर्श राष्ट्र यही है।

भावार्थ—हमारे राष्ट्र में 'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य' सब अपना कार्य ठीक से करें। श्रमिक लोग अपने कृषि आदि कार्यों को ठीक से करनेवाले हों। हमारे सन्तान उत्तम हों। राष्ट्र में सबका योगक्षेम ठीक से चले।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**प्राणादयः**। छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्**। स्वरः—**गान्धारः**॥

प्राण-चक्षु-मन

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा॥२३॥

१. गतमन्त्र के आदर्श राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह **प्राणाय स्वाहा**=प्राणशक्ति की वृद्धि के लिए यज्ञशील हो, स्वार्थ का त्याग करे। २. **अपानाय स्वाहा**=अपानशक्ति की वृद्धि के लिए यज्ञशील हो, स्वार्थ का त्याग करे। ३. **व्यानाय स्वाहा**=व्यानशक्ति की वृद्धि के लिए यज्ञशील हो, स्वार्थ का त्याग करे। शरीर में प्राणशक्ति बल देती है, अपानशक्ति दोषों को दूर करती है तथा व्यान सारे शरीर में नाड़ी-संस्थान का शासन करती हुई उसे ठीक रखती है। यज्ञशील पुरुष के 'प्राणापानव्यान' सब ठीक रहते हैं। ४. **चक्षुषे स्वाहा**= दृष्टिशक्ति के ठीक रखने के लिए तू यज्ञशील हो और स्वार्थ की भावना से ऊपर उठ। **श्रोत्राय स्वाहा** =इसी प्रकार श्रोत्रशक्ति को ठीक रखने के लिए भी तू यज्ञशील हो और स्वार्थ को छोड़नेवाला बन। वस्तुतः यज्ञशील पुरुष की सब ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक रहती हैं और उसकी ज्ञानसाधना में उचित रूप से सहायक बनती हैं। स्वार्थ की भावना इनको अपवित्र व क्षीणशक्ति कर देती है और मनुष्य का ज्ञान नष्ट हो जाता है। ५. **मनसे स्वाहा**=मन की मननशक्ति की वृद्धि के लिए तू यज्ञशील बन और स्वार्थत्याग की वृत्तिवाला हो। स्वार्थ मन को भी मलिन कर देता है और मलिन मन में विचारशक्ति नहीं रहती।

भावार्थ—हम स्वार्थ से ऊपर उठकर यज्ञियवृत्तिवाले बनें, जिससे हमारे 'प्राणापानव्यान' ठीक रहें, चक्षु आदि इन्द्रियाँ ज्ञान-ग्रहण-क्षम हों तथा हमारा मन मननशील हो।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**दिशः**। छन्दः—**विराडतिधृतिः**[क]। स्वरः—**षड्जः**॥

विश्व का सौन्दर्य

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वहार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा॥२४॥

१. पिछले मन्त्र की भावना को ही विस्तार से इस अध्याय की समाप्ति तक कहेंगे। जब मनुष्य की वृत्ति यज्ञिय व स्वार्थ से ऊपर उठी हुई होती है तब उसके लिए सारा संसार सुन्दर हो जाता है। अपनी वृत्ति खराब होने पर संसार भी उसके लिए खराब हो जाता है, अतः कहते हैं कि **प्राच्यै दिशे स्वाहा**=पूर्व दिशा के लिए यज्ञशील बन। 'यह दिशा तेरे लिए सुन्दर हो' इसके लिए तू स्वार्थ से ऊपर उठ। **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=पूर्व दिशा की उपदिशा के लिए भी तू यज्ञशील बन। २. इसी प्रकार **दक्षिणायै दिशे स्वाहा**=दक्षिण दिशा के सौन्दर्य के लिए तू यज्ञ करनेवाला बन। **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=इस दक्षिण की उपदिशा के लिए भी यज्ञशील बन। ३. **प्रतीच्यै दिशे स्वाहा**=पश्चिम दिशा के लिए तू यज्ञिय हो और **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=पश्चिम की उपदिशा के लिए यज्ञ करनेवाला बन। ४. **उदीच्यै दिशे स्वाहा**=उत्तर दिशा के सौन्दर्य के लिए तू यज्ञशील हो और **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=उत्तर की उपदिशा के लिए यज्ञ करनेवाला बन। ५. **ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहा**=ऊर्ध्व दिशा के लिए तू यज्ञशील हो और **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=ऊर्ध्व की उपदिशा के लिए यज्ञ करनेवाला बन। ६. **दिशे स्वाहा**=नीचे की दिशा के लिए तू यज्ञशील हो और **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=नीचे की उपदिशा के लिए तू यज्ञशील हो।

भावार्थ—यज्ञिय व निःस्वार्थ वृत्ति के द्वारा हमारा यह संसार आगे-पीछे, दायें-बायें व ऊपर-नीचे सब ओर से सुन्दर-ही-सुन्दर हो जाता है। आसुरवृत्ति ने ही संसार को मलिन किया हुआ है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**जलादयः**। छन्दः—**अष्टिः**। स्वरः—**मध्यमः**।

जलों का नैर्मल्य

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥२५॥

१. **अद्भ्यः स्वाहा**=सर्वत्र व्याप्त जलों के लिए हम स्वार्थ की वृत्ति से ऊपर उठकर यज्ञियवृत्तिवाले बनें। जब हम स्वार्थ व ईर्ष्या-द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं तब ये जल भी हमारे लिए अधिक गुणकारी हो जाते हैं। यह वृत्ति इन जल व ओषधियों को हमारे लिए 'सुमित्रिय' बनाती है। द्वेषार्ह व ईर्ष्यालु के लिए ये दुर्मित्रिय हो जाती है। ईर्ष्या-द्वेष के साथ पिया हुआ पानी व खाया हुआ अन्न हमारे अन्दर विषों को जन्म देता है, अतः यज्ञिय वृत्तिवाले बन इन जलों को हम अपने लिए अमृत बनानेवाले हों। २. **वार्भ्यः स्वाहा**=रोगों का निवारण करनेवाले उत्तम जलों के लिए हम यज्ञशील हों। ३. **उदकाय स्वाहा**=वाष्परूप से ऊपर उठते जलों के लिए हम यज्ञशील हों। वाष्पीभूत होकर जो जल फिर द्रवीभूत किया जाता है उसे उदक कहते हैं। 'वह हमारे लिए उत्तम हो', इसके लिए हम यज्ञ करते हैं। ४. **तिष्ठन्तीभ्यः**=स्थिर जलों के लिए **स्वाहा**=हम यज्ञ करते हैं और ५. **स्रवन्तीभ्यः स्वाहा**=स्रोतोंरूप जलों के लिए यज्ञ हो। ६. **स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा**=प्रवाहित होते हुए जलों के लिए यज्ञ हो। ७. **कूप्याभ्यः**=कूप के जलों के लिए यज्ञ हो। ८. **सूद्याभ्यः**=(सूद=spring) झरने के जलों के लिए **स्वाहा**=यज्ञ हो। ९. **धार्याभ्यः स्वाहा**=बाँध आदि बनाकर धारण किये गये जलों के लिए यज्ञ हो। १०. **अर्णवाय स्वाहा**=बड़ी झीलवाले (Lake) जलों के लिए यज्ञ हो। ११. **समुद्राय स्वाहा**=समुद्र के जल की शुद्धि के लिए यज्ञ हो तथा १२. **सरिराय स्वाहा**=वृष्टिजल के लिए यज्ञ हो, अर्थात् यज्ञ के द्वारा ये सब जल बड़े शुद्धरूप में हमें प्राप्त हों।

भावार्थ—मनुष्य की वृत्ति जब निःस्वार्थ व यज्ञशील होती है तब उसके लिए सब जल सुमित्रिय=कल्याणकर होते हैं।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**वातादयः**। छन्दः—**विराडभिकृतिः**। स्वरः—**ऋषभः**॥

वात-विमलता (वायुशुद्धि) व वृष्टि

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहावर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥

१. **वाताय स्वाहा**=सदा बहनेवाली वायु के लिए यज्ञ हो, अर्थात् यज्ञों से शुद्ध हुई-हुई वायु हमारे जीवन के लिए बहे। २. **धूमाय स्वाहा**=धूम के लिए यज्ञ हो। अग्नि में आहुत द्रव्य सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर जब जलवाष्प के साथ इधर-उधर उड़ते हैं तब वह धूम कहलाता है। आकाश में पहुँचकर यही अभ्र व मेघ के रूप में हो जाता है। ३. **अभ्राय स्वाहा**=इस 'अभ्र' के लिए—सूक्ष्म मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। ४. **मेघाय स्वाहा**=मेघों के लिए यज्ञक्रिया हो। ५. **विद्योतमानाय स्वाहा**=चमकते हुए मेघ के लिए अथवा विद्युत् से

युक्त मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। ६. **स्तनयते स्वाहा**=गर्जना करते हुए मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। ७. **अवस्फूर्जते स्वाहा**=(अधो वज्रवदघातं कुर्वते—द०) बिजली को नीचे गिराते हुए मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। ८. **वर्षते स्वाहा**=वर्षा करते हुए मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। ९. **अववर्षते स्वाहा**=नीचे झुककर बरसनेवाले मेघों के लिए यज्ञक्रिया हो। १०. **उग्रं वर्षते स्वाहा**=बड़े ज़ोर से बौछार के रूप में बरसते हुए मेघ के लिए यज्ञ हो। ११. **शीघ्रं वर्षते स्वाहा**=तेज़ी से बरसते हुए मेघ के लिए यज्ञ हो। १२. **उद्गृह्णते स्वाहा**=जलों को ऊपर ग्रहण करनेवाले मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। १३. **उद्गृहीताय स्वाहा**=जो जलों को ऊपर ग्रहण कर चुका है उस मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। जब बादल अधिक-से-अधिक पानी को अपने अन्दर ले-चुकता है और बरसने लगता है तब वह उद्गृहीत कहलाता है, उस बादल के लिए यज्ञ की क्रिया हो। १४. **प्रुष्णते स्वाहा**=स्थूल बिन्दुओं में बरसनेवाले मेघ के लिए यज्ञक्रिया हो। १५. **शीकायते स्वाहा**=संयम करनेवाले बादल के लिए यज्ञक्रिया हो। १६. **प्रुष्वाभ्यः**=परिपूर्ण घनघोर वर्षा करनेवाले बादलों के लिए यज्ञक्रिया हो। १७. **ह्रादुनीभ्यः स्वाहा**=अधिक गड़गड़ाहट करते हुए बादलों के लिए यज्ञक्रिया हो। १८. **नीहाराय स्वाहा**=कुहरे के लिए यज्ञक्रिया हो।

भावार्थ—हम यज्ञादि उत्तम क्रियाओं को करनेवाले बनें, जिससे वायुमण्डल की शुद्धि हो, वृष्टि आदि यथासम्भव ठीक प्रकार से हो।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**अग्न्यादयः**। छन्दः—**जगती**। स्वरः—**निषादः**।

अग्नीषोमात्मक जगत् का माधुर्य

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥

१. अग्नितत्त्व को ठीक रखने के लिए हम यज्ञशील बनें। स्वार्थ से ऊपर उठकर हमारा आहार-विहार चलेगा तो हममें अग्नितत्त्व की वृद्धि होगी। यह अग्नितत्त्व प्रकाश व प्रचण्डता का प्रतीक है। यज्ञशील होने पर हमारे भोजन के सात्त्विक होने से जाठराग्नि भी ठीक होगी। २. **सोमाय स्वाहा**=सोमतत्त्व की वृद्धि के लिए हम यज्ञशील हों। यह सोमतत्त्व शान्ति व शक्ति का प्रतीक है। इन अग्नि व सोमतत्त्व के मेल होने पर ही सारा माधुर्य उत्पन्न होता है। ३. **इन्द्राय स्वाहा**=इन्द्रियशक्ति के विकास के लिए हम यज्ञशील हों। यज्ञ व स्वार्थत्याग से विपरीत स्वार्थपरता भोगवाद को बढ़ाती है और इन्द्रशक्ति को क्षीण करती है। ४. **पृथिव्यै स्वाहा**=इस शरीररूप पृथिवी को ठीक रखने के लिए हम यज्ञशील बनें। ५. **अन्तरिक्षाय स्वाहा**=हृदयान्तरिक्ष को ठीक रखने के लिए यज्ञक्रिया हो। ६. **दिवे स्वाहा**=मस्तिष्करूप द्युलोक को ठीक रखने के लिए यज्ञ हो। ७. **दिग्भ्यः स्वाहा**=सब दिशाओं को ठीक रखने के लिए हम यज्ञशील बनें। ८. **आशाभ्यः स्वाहा** =सब उपदिशाओं को ठीक रखने के लिए यज्ञ की क्रिया हो। ९. **उर्व्यै दिशे स्वाहा**=इस अत्यधिक दूरी तक फैली हुई दिशा के लिए यज्ञक्रिया हो, तथा १०. **अर्वाच्यै दिशे स्वाहा**=समीप वर्त्तमान दिशा के लिए यज्ञक्रिया हो।

भावार्थ—हममें यज्ञिय वृत्ति होने पर जहाँ हमारा जीवन अग्नि व सोम दोनों तत्त्वों के ठीक मेल से बड़ा मधुर बनेगा वहाँ दूर-से-दूर व समीप-से-समीप वर्त्तमान सब दिशाएँ हमारे लिए सुन्दर होंगी।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**नक्षत्रादयः**। छन्दः—**भुरिगष्टिः**। स्वरः—**मध्यमः**।

यज्ञ से ईति निवारण व सुकाल

[क]नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳस्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा [र]श्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा॥२८॥

१. **नक्षत्रेभ्य स्वाहा**=नक्षत्रों के लिए यज्ञक्रिया हो। इन नक्षत्रों से किसी प्रकार की आधिदैविक आपत्ति की हमारे लिए आशंका न रहे, इसके लिए हम यज्ञ करनेवाले बनें। **नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा**=इन नक्षत्रों में रहनेवाले प्राणियों से हमारा अविरोध हो, इसके लिए हम यज्ञ की वृत्तिवाले बनें। जैसे समीप के देशों से हम मित्रभाव चाहते हैं, उसी प्रकार इन नक्षत्रों में रहनेवाले प्राणियों से भी हमारा विरोध न हो। इस सबके लिए चाहिए यही कि हम स्वार्थ की वृत्ति से ऊपर उठें। ३. **अहोरात्रेभ्यः स्वाहा**=दिन व रात की उत्तमता के लिए हम यज्ञशील हों। ४. **अर्धमासेभ्यः स्वाहा**=अर्धमासों के लिए—शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष के उत्तम होने के लिए हम यज्ञशील बनें। ५. **मासेभ्यः स्वाहा**=मासों के सौन्दर्य के लिए हम यज्ञशील बनें। ६. **ऋतुभ्यः स्वाहा**=ऋतुओं की अनुकूलता के लिए हम यज्ञशील हों। ७. **अर्तवेभ्यः स्वाहा**=ऋतुजन्य पदार्थों की अनुकूलता के लिए हम यज्ञशील हों। ८. **संवत्सराय स्वाहा** =वर्ष के लिए हम यज्ञशील हों। यज्ञ के द्वारा हमारा सारा वर्ष सुन्दर-ही-सुन्दर व्यतीत हो। यज्ञों के होने पर सम्पूर्णकाल हमारे लिए अनुकूल-ही-अनुकूल हो। काल ही क्या, ९. **द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा**=द्युलोक व पृथिवीलोक की अनुकूलता के लिए हम यज्ञशील बनें। १०. **चन्द्राय स्वाहा**=चन्द्र की अनुकूलता के लिए हम यज्ञों को अपनाएँ। ११. **सूर्याय स्वाहा**=सूर्य की अनुकूलता के लिए हम यज्ञशील बनें। १२. **रश्मिभ्यः स्वाहा**=सूर्य व चन्द्र की किरणों की अनुकूलता के लिए हम यज्ञ करनेवाले बनें। १३. **वसुभ्यः स्वाहा, रुद्रेभ्यः स्वाहा, आदित्येभ्यः स्वाहा**=वसुओं, रुद्रों व आदित्यों की अनुकूलता के लिए हम यज्ञियवृत्तिवाले बनें। १४. **मरुद्भ्यः**=४९ प्रकार के मरुतों—वायुओं की शुद्धता के लिए **स्वाहा**=हम यज्ञ करें। १५. **विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा**=सब देवताओं की अनुकूलता के लिए हम यज्ञशील हों। १६. **मूलेभ्यः स्वाहा**=वृक्षों के मूलों के लिए यज्ञ हो। १७. **शाखाभ्यः स्वाहा**=शाखाओं के लिए यज्ञ हो। १८. **वनस्पतिभ्यः स्वाहा**=वनस्पतियों के लिए यज्ञ हो। १९. **पुष्पेभ्यः स्वाहा**=फूलों के लिए यज्ञ हो। २०. **फलेभ्यः स्वाहा**=फलों के लिए यज्ञ हो। २१. **ओषधीभ्यः स्वाहा**=ओषधियों के लिए यज्ञ हो, अर्थात् यज्ञों के द्वारा वृष्टि होकर सिंची हुई ये वनस्पतियाँ व ओषधियाँ तथा फल और फूल सब हमारे लिए अनुकूल व गुणकारी हों।

भावार्थ—यज्ञों के द्वारा सब लोकों की हमारे साथ अनुकूलता होकर हमें सब ऋतुओं का सौन्दर्य प्राप्त होता है। सूर्य-चन्द्रादि देव तथा वसु, रुद्र, आदित्य व मरुत् आदि देवगण हमारे अनुकूल होते हैं। सब देवताओं की अनुकूलता के साथ सब ओषधि-वनस्पतियाँ हमारे लिए हितकर होती हैं और हम कभी आधिदैविक आपत्तियों के शिकार नहीं होते।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**लिङ्गोक्ताः**। छन्दः—**निचृदत्यष्टिः**। स्वरः—**गान्धारः**।

लोकत्रयी की अनुकूलता

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥२९॥

१. **पृथिव्यै स्वाहा**=इस पृथिवीलोक के सौन्दर्य के लिए यज्ञक्रिया हो। २. **अन्तरिक्षाय स्वाहा**=अन्तरिक्षलोक की अनुकूलता के लिए यज्ञक्रिया हो। ३. **दिवे स्वाहा**=द्युलोक की अनुकूलता के लिए यज्ञक्रिया हो। ४. **सूर्याय स्वाहा, चन्द्राय स्वाहा, नक्षत्रेभ्यः स्वाहा**=सूर्य, चन्द्र तथा अन्य नक्षत्रों की अनुकूलता के लिए यज्ञक्रिया हो। ५. **अद्भ्यः स्वाहा, ओषधीभ्यः स्वाहा, वनस्पतिभ्यः स्वाहा**=जलों, ओषधियों व वनस्पतियों की उत्तमता के लिए यज्ञ हों। ६. **परिप्लवेभ्यः**=जलों में चतुर्दिक् तैरनेवाले प्राणियों की अनुकूलता के लिए **स्वाहा**=यज्ञ हो। **चराचरेभ्यः स्वाहा**=निरन्तर चरणशील प्राणियों की अनुकूलता के लिए यज्ञक्रिया हो। **सरीसृपेभ्यः स्वाहा**=रेंगनेवाले छिपकली, सर्प आदि प्राणियों की अनुकूलता के लिए यज्ञक्रिया हो।

भावार्थ—यज्ञों से सब लोक, सब देव, सब वनस्पति, ओषधि व सब प्राणी हमारे अनुकूल होंगे। हमारी वृत्ति यज्ञिय होगी तो सारा संसार हमारे अनुकूल होगा।

नोट—प्रस्तुत मन्त्र में ये त्रिक द्रष्टव्य हैं—

पृथिवी	सूर्य	जल	परिप्लव
अन्तरिक्ष	चन्द्र	ओषधि	चराचर
द्युलोक	नक्षत्र	वनस्पति	सरीसृप

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**वस्वादयः**। छन्दः—**कृतिः**। स्वरः—**निषादः**॥

शरीर की उत्तमता

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥३०॥

१. **असवे स्वाहा**=प्राणों के लिए यज्ञक्रिया हो। २. **वसवे स्वाहा**=शरीर में वास करनेवाले वासकतत्त्वों के लिए यज्ञ हो। ३. **विभुवे स्वाहा**=व्यापक वायुतत्त्व के लिए यज्ञ हो। ४. **विवस्वते स्वाहा**=किरणों के द्वारा पालन करनेवाले सूर्य के लिए यज्ञ हो। ५. **गणश्रिये स्वाहा**=शरीर में जो 'ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-प्राण' आदि के गण हैं अथवा 'वसु, रुद्र, आदित्य व मरुत्' आदि देवों के गण हैं, उनकी शोभा के लिए यज्ञ हो। ६. **गणपतये**=शरीर में होनेवाले इन सब गणों के पति के लिए यज्ञ हो। ७. **अभिभुवे स्वाहा**=सब शत्रुओं के पराजय करनेवाले के लिए यज्ञक्रिया हो। ८. **अधिपतये**=सब इन्द्रियादि का स्वामी बननेवाले के लिए यज्ञ हो। ९. **शूषाय**=शत्रुओं के शोषक बल के लिए **स्वाहा**=यज्ञ हो। १०. **संसर्पाय स्वाहा**=संसर्पण के लिए, जीवन के अन्त तक ठीक गति चलती रहे, इसके लिए यज्ञ हो। ११. **चन्द्राय**=आह्लादमयता के लिए यज्ञ हो। १२. **ज्योतिषे**=अन्तःप्रकाश के लिए यज्ञ हो। १३. **मलिम्लुचाय स्वाहा**=चोर के लिए यज्ञ हो, स्वार्थ को छोड़ने की क्रिया हो। उदाहरणार्थ एक चोर चोरी का दण्ड भोगकर घर लौटता

है। उसे यदि समाज कुछ स्वार्थत्याग करके जीवन में स्थापित करने का प्रयत्न करती है तो वह फिर चोर नहीं रह जाता। १४. **दिवा पतयते स्वाहा**=दिन के पति के लिए यज्ञक्रिया हो। 'हम दिन के अधिपति बने रहें। दिन हमारा अधिपति न बन जाए', इसके लिए हम सदा यज्ञादि उत्तम क्रियाओं में लगे रहें।

भावार्थ—यज्ञों से हम अपने जीवन को अत्युत्तम बना पाएँ।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**मासाः**। छन्दः—**भुरिगत्यष्टिः**। स्वरः—**गान्धारः**॥

मास त्रयोदशी व संवत्सर की अनुकूलता

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाँऽहसस्पतये स्वाहा ॥३१॥

१. **मधवे**=पुष्परसों के कारण अत्यन्त मधुर चैत्रमास के लिए, इस मास में वायुमण्डल में ojone का अंश अधिक होता है, अतः यह चैत्रमास स्वास्थ्य के लिए भी अत्यन्त मधुर है, उस चैत्रमास के लिए **स्वाहा**=यज्ञक्रिया हो। यज्ञों के द्वारा यह मास हमारे स्वास्थ्य के अनुकूल हो। २. **माधवाय स्वाहा**=चारों ओर पुष्पों की शोभा के कारण **मा**=लक्ष्मी के **धव**=पतिरूप इस वैशाख मास के लिए **स्वाहा**=यज्ञक्रिया हो। ३. **शुक्राय स्वाहा**=(शुच्) पसीने आदि के द्वारा मल को निकालकर पवित्र करनेवाले इस ज्येष्ठमास के लिए यज्ञक्रिया हो। ४. **शुचये**=पसीने आदि से मलों को दूर करके शरीर को दीप्त करनेवाले इस आषाढ़ मास के लिए **स्वाहा**=यज्ञक्रिया हो। ५. **नभसे स्वाहा**=(नभ हिंसायाम्) सब रोगों व रोगकृमियों को समाप्त करनेवाले अथवा सन्ताप को दूर करनेवाले इस श्रावण मास के लिए यज्ञक्रिया हो। ६. **नभस्याय स्वाहा**=बुराई को समाप्त करने में उत्तम इस भाद्रपद मास के लिए यज्ञक्रिया हो। ७. **इषाय स्वाहा**=सब अन्नों के परिपाकवाले अथवा वर्षभर निरन्तर गति के कारणभूत इस अश्विन मास के लिए यज्ञक्रिया हो। ८. **ऊर्जाय स्वाहा**=बल और प्राणशक्ति का उपचय करनेवाले इस कार्तिक मास के लिए यज्ञक्रिया हो। ९. **सहसे स्वाहा** =सहनशक्ति व बल की वृद्धि के कारणभूत मार्गशीर्ष मास के लिए स्वार्थत्याग हो। १०. **सहस्याय स्वाहा**=बलोपचय में उत्तम पौष मास के लिए यज्ञक्रिया हो। ११. **तपसे स्वाहा**=जिसमें सन्त लोग तप को महत्त्व देते हैं, उस माघ मास के लिए यज्ञ हो। १२. **तपस्याय स्वाहा**=तप करने के लिए सर्वोत्तम इस फल्गुन मास के लिए यज्ञक्रिया हो और इन बारह मासों के अतिरिक्त चन्द्र गणना के अनुसार तेरहवें मास **अंहसस्पतये स्वाहा**=अहंसस्पति के लिए भी यज्ञ हो। यह सामान्य भाषा में 'मलमास' कहलाता है, क्योंकि यह तीसरे-चौथे वर्ष के बीच में यूँही आ जाता है। इस मास को भी हम दैनिक यज्ञ के द्वारा सुखदायी बना पाएँ।

भावार्थ—याज्ञिक वृत्ति के द्वारा हमारे वर्ष के सारे ही मास बड़े सुन्दर बीतें। हमारा सारा वर्ष शुभ-ही-शुभ हो।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**वाजादयः**। छन्दः—**अत्यष्टिः**। स्वरः—**गान्धारः**॥

सात्त्विक अन्न व सात्त्विक बुद्धि

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

१. **वाजाय स्वाहा**=(अन्नं=वाजः—श० ५।१।१।१६) अन्न के लिए यज्ञक्रिया हो। (**यज्ञाद् भवति पर्जन्यः, पर्जन्यादन्नसम्भवः**' गीता) यज्ञ से बादल होकर अन्न होता है, अतः इस अन्न की प्राप्ति के लिए हमारी यज्ञक्रिया ठीक से होती रहे। २. **प्रसवाय स्वाहा**='प्रसव' का शब्दार्थ अन्न व अन्न का होना ही है। उस प्रसव के लिए यज्ञक्रिया हो। ३. **अपिजाय स्वाहा**=दुबारा उत्पन्न होनेवाले (Born again) अन्नों के लिए यज्ञक्रिया हो अथवा (अप्सु जायते) जलों में होनेवाले अन्नों के लिए यज्ञ हो। ४. **क्रतवे स्वाहा**=शक्ति के लिए यज्ञ हो। उत्तम अन्नों से ही शक्ति प्राप्त होगी। ५. **स्वः स्वाहा**=सुख-प्राप्ति के लिए व प्रकाश के लिए यज्ञ हो। सात्त्विक अन्नों के सेवन से बुद्धि शुद्ध होगी और प्रकाश की प्राप्ति होगी। ६. **मूर्ध्ने स्वाहा**=मस्तिष्क के लिए यज्ञ हो। सात्त्विक अन्न बुद्धि को भी निर्मल करेगा। ७. **व्यश्नुविने स्वाहा**=शरीर में व्याप्त होनेवाले वीर्य के लिए यज्ञ हो। ८. **आन्त्याय भौवनाय स्वाहा**=सबसे अन्त में होनेवाले, सब प्राणियों के लिए हितकर ओज के लिए यज्ञ हो। शरीर में रस-रुधिरादि क्रम से वीर्य उत्पन्न होता है। उसका भी सार यह ओज है। यह सबसे अन्त में होनेवाला है। प्राणिमात्र के लिए यह हितकर है। ९. **भुवनस्य पतये स्वाहा**=भुवन के पति के लिए यज्ञ हो, अर्थात् सब प्राणियों की रक्षा करनेवाले के लिए यज्ञ हो। यज्ञ होने की भावना होने पर ही कोई व्यक्ति सब प्राणियों का रक्षक बन सकता है। १०. **अधिपतये स्वाहा**=(मनो वै प्राणानामधिपतिः—श० १४।३।२।३) मन के लिए यज्ञ हो। वस्तुतः यज्ञिय भावना ही मन को स्वस्थ बनाती है। ११. **प्रजापतये स्वाहा**=प्रजापति के लिए यज्ञ हो। उस प्रभु को प्राप्त करने के लिए यह यज्ञ की भावना आवश्यक है। यज्ञिय भावना से हम भी प्रजापति का छोटारूप बन जाते हैं।

भावार्थ—यज्ञ से ही हमें वह सात्त्विक अन्न प्राप्त होता है जो हमारी शक्ति के वर्धन के साथ हमारी बुद्धि का भी वर्धक होता है। यह अन्न हमें सौम्य वीर्य को प्राप्त कराकर जितेन्द्रिय व लोकहित के कर्मों में लगनेवाला बनाता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**आयुरादयः**। छन्दः—**भुरिक्कृतिः**[क], **भुरिगतिधृतिः**[ङ]।
स्वरः—**निषादः, षड्जः**॥

उत्तम जीवन

[क]आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहापानो यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा [र]वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा ॥३३॥

१. **आयुः**=सारा जीवन **यज्ञेन**=यज्ञ से **कल्पताम्**=अलंकृत हो और शक्तिसम्पन्न बने। इसके लिए **स्वाहा**=मैं स्वार्थ की भावना का त्याग करूँ। २. **प्राणो यज्ञेन कल्पताम्**=मेरी प्राणशक्ति यज्ञरूप उत्तम कर्मों से सशक्त बने, **स्वाहा**=इसके लिए मैं स्व का त्याग करूँ। ३. **अपानो यज्ञेन कल्पताम्**=यज्ञ से मेरी अपानशक्ति समर्थ बने। **स्वाहा**=इसके लिए मैं स्वार्थ से ऊपर उठूँ। ४. **व्यानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=मेरी व्यानवायु यज्ञ के द्वारा सशक्त बने, इसके लिए मैं स्वार्थ को छोड़नेवाला होऊँ। ५. **उदानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=कण्ठदेशस्थ

उदानवायु यज्ञ से सशक्त बने, अतः मैं स्वार्थ को छोड़ूँ। ६. **समानो यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा**=शरीर में समता को स्थापित करनेवाली मेरी समानवायु यज्ञ से सशक्त बनें, अतः मैं स्वार्थ का त्याग करूँ। ७. **चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=मैं इसलिए स्व का त्याग करूँ कि मेरी आँख यज्ञ से शक्तिशाली बने। ८. **श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=मेरा श्रोत्र यज्ञ के द्वारा शक्तिशाली बने, अतः मैं स्वार्थ को छोड़नेवाला बनूँ। ९. **वाग्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=मेरी वाणी भी यज्ञ के द्वारा शक्तिशाली बने, इसके लिए मैं स्वार्थ का त्याग करूँ। १०. **मनो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=मेरा मन यज्ञ से सुभूषित हो व सशक्त बने, अतः मैं स्वार्थ का त्याग करूँ। ११. **आत्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**=मैं यज्ञ से सुभूषित व सशक्त बनूँ, अतः मैं स्व का त्याग करता हूँ। १२. **ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा**=चतुर्वेदवेत्ता पुरुष भी यज्ञ से सुभूषित हो, अतः वह स्वार्थ से ऊपर उठे। १३. **ज्योतिः**=आत्मप्रकाश **यज्ञेन**=यज्ञ के द्वारा **कल्पताम्**=सिद्ध हो, **स्वाहा**=इसके लिए हम स्वार्थत्याग करें। १४. **स्वः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा**=सुख यज्ञ के द्वारा सिद्ध हो, अतः हम स्वार्थ को छोड़ें। १५. **पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा**='तेजो ब्रह्मवर्चसं श्रीर्वै पृष्ठानि'—ए० ६।५ हमारा तेज, ब्रह्मवर्चस व श्री यज्ञ के द्वारा सुभूषित व सशक्त हो, अतः हम स्वार्थ से ऊपर उठें। १६. **यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा**='यज्ञो वै विष्णुः'=वह यज्ञरूप प्रभु यज्ञ से सिद्ध हो, हमें प्राप्त हो, अतः हम स्वार्थ को छोड़कर जीवन को यज्ञिय बनाते हैं। **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'**=देवता यज्ञ परमात्मा की उपासना यज्ञ से ही करते हैं।

भावार्थ—यज्ञ के द्वारा हमारा सारा जीवन, सब इन्द्रियशक्तियाँ, मन व बुद्धि सशक्त होते हैं। इसी से हम प्रभु की पूजा भी कर पाते हैं।

ऋषिः—**प्रजापतिः**। देवता—**यज्ञः**। छन्दः—**भुरिगुष्णिक्**। स्वरः—**ऋषभः**॥

निर्दोष सुखमय दीर्घ जीवन

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा॥३४॥

१. **एकस्मै स्वाहा**=जीवन के प्रथम वर्ष की उत्तमता के लिए हम स्वार्थत्याग करते हैं। वस्तुतः 'किस प्रकार माता का स्वार्थत्याग व तप बालक के प्रथम वर्ष को पूर्ण नीरोग बना सकता है' यह स्पष्ट है। माता का पूर्ण सात्त्विक भोजन व सात्त्विक क्रियाएँ बालक की नीरोगता के लिए आवश्यक हैं। २. **द्वाभ्यां स्वाहा** =जीवन के द्वितीय वर्ष की उत्तमता के लिए भी हम स्वार्थत्याग करते हैं। ३. इसी प्रकार तीन-चार-पाँच इस क्रम से **शताय स्वाहा**=पूरे सौवें वर्ष के लिए भी हम स्वार्थत्याग करते हैं और सौवें से भी ऊपर उठकर ४. **एक शताय स्वाहा**=एक सौ एकवें वर्ष के लिए भी हम स्वार्थ से ऊपर उठते हैं। ५. **व्युष्ट्यै स्वाहा**=(वि+उष दाहे) विशेषरूप से सब रोगों व दोषों को जलाने के लिए हम स्वार्थत्याग करते हैं। ६. और इस प्रकार **स्वर्गाय** =(सुअर्ग) उत्तम कर्मों के अर्जन के लिए तथा इस लोक को सुखमय बनाने के लिए हम स्वार्थत्याग करते हैं। स्वार्थत्याग से ही दीर्घजीवन भी प्राप्त होगा, दोषदहन होकर स्वर्ग का निर्माण होगा।

भावार्थ—हम यज्ञियवृत्तिवाले बनें, जिससे हमारा एक-एक वर्ष उत्तम बीते। हमारा जीवन निर्दोष तथा सुखमय हो।

सूचना—१. इस अन्तिम मन्त्र में 'एकशताय' शब्द स्पष्ट संकेत कर रहा है कि जीवन

सौ वर्ष से ऊपर भी चलना ही चाहिए। 'भूयश्च शरदः शतात्' की भी यही भावना है।

२. यहाँ २३ से ३४ तक सब मन्त्रों की मूल भावना इतनी ही है कि यज्ञमय जीवन ही सब सुखों का साधक है। यज्ञों से ही जीवन व संसार उत्तम बनता है।

'इन यज्ञों को जिस प्रभुकृपा से हम सिद्ध कर पाएँगे अथवा जिस प्रभु की कृपा से हमारी वृत्ति यज्ञिय बनेगी' उस प्रभु की उपासना से अगले अध्याय का प्रारम्भ होता है। वस्तुतः यह उपासना स्वयं सर्वमहान् यज्ञ है, अतः यज्ञ से ही अगले अध्याय का प्रारम्भ है।

इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥